ईश्वर रहस्यमय है।

ॐ-------------. ईश्वर -------------- ईश्वर बहुत ही रहस्मय है, पहले भी रहस्यमय था, अभी भी रहस्यमय रहेगा। उसका कारण यह है कि ईश्वर निकट का पदार्थ है। यह हमारे निकट है, (सबसे ज्यादा निकट) इससे निकट और कोई पदार्थ नहीं है। बात यही है कि यह ईश्वर ही है। जो पदार्थ सबसे निकट होगा, वह रहस्यमय होगा। जो थोड़ा बहुत दूर होता है तो उसका पता लगाने में थोड़ा बहुत सहायता हो सकती है। जैसे आँख देख सकती है, कान सुन सकता है। मगर वो ईश्वर बिल्कुल ही पास होने की वजह से आंख उसे देख नहीं सकता है। बुद्धि समझ नहीं सकता है। इसलिए वह हमेशा रहस्यमय रहता है। आगे भी रहस्यमय ही रहेगा।

फिर भी लोग यथाशक्ति उसे समझने की कोशिश करते आये हैं, करते रहेंगे। ये एक लाजिमी बात है। ईश्वर एक ऐसा चीज है जिसके बिना हमारा गुजारा नहीं हो सकता है। किसी भी सूरत में, एक सेकिंड के लिए भी नहीं। जिन्दा नहीं रह सकते हैं। हमारे अंदर जिंदगी ईश्वर ही है। ईश्वर के बिना और कोई भी पदार्थ हमारे अंदर नहीं है। असल बात यह है कि जिससे हर सैकिंड पर, हर मिनट पर जिसे हमारा ताल्लुकात है हम उसे समझने में असमर्थ रहते हैं।

रूप

जैसे मसलन हमारी आंख देखती हैं। हम आंखों से देखते हैं। मगर आंखों से देखने पर हमें रूप का नहीं, अग्नि का दर्शन होता है। रूप जितने भी होते हैं, अग्नि के गुण होते हैं। रूप, अग्नि का गुण होने की वजह से ही हम देख सकते है। आखों के अंदर भी अग्नि काम करती है। तभी जाकर भिन्न रूप नजर आते हैं। मगर आंख यह समझता नहीं है कि यह वास्तव में अग्नि का गुण है।

सृष्टि के अंदर जितने भी रूप होते हैं, वृक्ष हो, लता हो, पशु हो, पक्षी हो, कुछ भी हो, जितनी भी शक्ल नज़र आती है, यह सब अग्नि के ही रूप हैं। तो सर्वत्र एक ही रूप सिद्ध होयेंगा। सब रूप अग्नि के हैं सारे रूप अग्नि के होने की वजह से जितने भी ये रूप हैं, एक ही होयेंगा, मनुष्य हो, पशु हो, पक्षी हो, लता हो, तारामण्डल हो, सूर्य हो, कुछ हो। सब एक ही रूप हैं, अग्नि की वजह से। मगर हम देखते भिन्न भिन्न हैं।

वास्तव में इस रहस्य को हम देख नहीं रहे। अलहदा अलहदा देखते हैं। सत्य को हम देख रहे जंत्र से। जंत्री के पीछे हम पड़ जाते है। गलती से हम आराम लेने की कोशिश

करते हैं, उसमें हम कामयाब नहीं होते हैं। सारे रूप अग्नि के ही हैं और किसी के नहीं। पर हम जंत्र के पीछे पड़े रहते हैं। रूप के पीछे पड़े रहते हैं। अग्नि को भूल जाते हैं।

शब्द

इसी प्रकार तुम किसी शब्द को सुनते हो। शब्द आकाश का गुण है। शब्द जितने भी हैं, ये आकाश के ही गुण होयेंगे। और किसी के नहीं। शब्द एक ही सिद्ध होयेंगा। कल्पना करके हम दो, चार आठ, दस प्रन्दह या बीस या हजारों बना लेते है। वास्तव में वो पदार्थ एक ही है। वो शब्द एक ही है। इसको भिन्न नहीं बनाया जा सकता है। एक ही शब्द तमाम संसार के अंदर है। मगर कल्पना करके हम उसे भिन्न शकल बना लेते है। जैसे इंगलिश हुई, उर्दू हुई, संस्कृत हुई, हिन्दी हुई, पारसी हुई और भी जितनी भाषा हुई, बनायी गई। वास्तव में शब्द सब जगह एक ही है। कल्पना करके हम उसे भिन्न भिन्न शकल दे देते है। कल्पना पर, जितने भी ये झगड़ा होते है, कल्पना पर होते है। सत्य पर नहीं। क्या हमारी जो जिन्दगी है यह सत्य पर चल रही है? नहीं, असत्य पर चल रही है?

रस

इसी प्रकार रस, स्वाद जिसे कहते हो। इसे जल का गुण माना जाता है। यह रस का स्वाद भिन्न भिन्न वस्तुओं में मिलने से पांच छह किस्म का बन कर षट् रस बिगड़ कर बन जाता है।

वास्तव में वह मिलावट से बनता है। रस तो एक ही है। कोई भी रस ले लो, रस तो एक ही सिद्ध होयेंगा, क्योंकि सब का अनुभव एक ही होगा। मीठा ले लो, खट्टा ले लो, लूण ले लो, मिर्च, मगर उनका रस एक ही होगा। उनका अनुभव एक ही स्थान पर होगा। रस ही है। भिन्नत्व कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह मिला हुआ होने से भिन्न प्रतीत होता है। वास्तव में सृष्टि के अंदर रस एक ही है। दूसरा कोई रस फैला नहीं है, न ही हो सकता है।

गन्ध

इसी प्रकार जो गंध, सुगंधि हमें प्रतीत होता है, बदबू, सुगंध, दुर्गंध बगैरह कहते हैं। वो बाद की चीज है, वास्तव में गंध तो एक ही है, दो चार कभी भी नहीं हो सकता। बात यह है कि प्रयोग होने की वजह से वह भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। गंध तो एक ही हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता।

जैसे वायु के साथ दुर्गंध लग जाता है तोहम समझते है वायु गंदी हो गई। वायु गंदी नहीं हुई। दुर्गंध के सम्पर्क से वह ऐसा प्रतीत होता है। वास्तव में वायु को इससे कोई

फर्क नहीं पड़ा। वायु तो शुद्ध ही रहता है। वह सम्पर्क की वजह से, भिन्न भिन्न पदार्थों के सम्पर्क की वजह से गंदी कहा जाता है। वास्तव में गंध एक ही है, दो चार कभी बना नहीं है।

स्पर्श

इसी प्रकार स्पर्श है। स्पर्श जो है वह वायु का गुण माना जाता है। स्पर्श शक्ति भी एक ही है, दोबारा नहीं बन सकता है, न ही कभी बना है। हम नरम करड़ा बगैरह कहते हो, यह सब उपाधि की वजह से लगता है। वास्तव में स्पर्श एक ही है। इसमें कोई फरक नहीं होयेंगा।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध - से पांच विषय है। ये पांच विषय सृष्टि के अंदर मुख्य हैं। इन पांच तत्वों को पांच गुण माना जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांच हैं। आकाश का गुण जो होता है ये शब्द होता है, वायु का गुण स्पर्श होता है, अग्नि का गुण रूप होता है, जल का गुण रस होता है। पृथ्वी का गुण गंध होता है। ये वास्तव में ध्यान से देखें तो ये पांचों गुण एक ही हैं। दो चार कभी भी नहीं हो सकते। ये एक विचित्र समाश है। दो चार तो हमने बना लिये। दो चार किस्म का हम उसे अनुभव करते हैं। किसी भी चीज को तुम अनुभव करते हो तो ये पांचों तत्व वहाँ काम करते है।

वहां किसी भी चीज को तुम उठाकर अनुसंधान करके देखो, अग्नि भी काम करते होयेंगा, शब्द भी काम करता होयेंगा, जल भी काम करता होयेंगा, पृथ्वी भी काम करता होयेंगा, वायु भी काम करता होयेंगा। जिस भी चीज को तुम अनुभव करोगे, वहां ये पाचों काम करेगे, होयेंगे। अकेले नहीं होयेंगे, पांचों होयेंगे। जैसे किसी पदार्थ को देखते हो, देखने के साथ उसका रूप भी आ जाता है, उसका शब्द भी आ जाता है, स्पर्श भी आ जाता है, गंध भी आ जाता है, ये सब आ जाता है। किसी भी पदार्थ को ले लो, वह निश्चित बात है।

रस का मतलब यह नहीं है कि चखने वाला रस आ जाता है। अभी संगीत सुना उसमें भी रस आ जाता है, गाना सुना उसके अंदर भी रस आ जाता है। किसी भी चीज को हम देखते हैं, उसमें भी रस आने पर ही आनन्द होयेगा। जब तक रस नहीं है, आनंद नहीं आएगा। कोई ड्रामा कर रहा है तो हम देखते हैं तो उसमें रस आ जाता है तो आनंद आ जाता है। रस आए बिना आनंद नहीं आता। वास्तव में वह रस जल की क्रिया है। मगर वो जल के रूप में सामने नहीं आता है। वास्तव में तुम नाचते हो, कूदते हो मोटे तौर पर यही नज़र आएगा किन्तु सूक्ष्म रूप से वह जल ही होयेगा। रस ही हायेगा।

इसी प्रकार सृष्टि में जब किसी पदार्थ को उठाकर देखेंगे ये पाचों का मेल वहां होयेगा, ये अकेले नहीं होगें। ये पाचों वास्तव में एक के ही अंदर जाकर लय रहता है। इन पाचों विषयों का जो अनुभव स्थान है, इन पाचों विषयों को जो अनुभव करता है वो एक ही है, दो चार कभी भी नहीं होयेगा। कुछ देर में जाकर ये पाचों विषय एक ही बन जाएंगे। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये एक स्थान पर पहुँचकर एक ही हो जाएगें, अनुभव एक ही होगा।

शब्द का अनुभव, स्पर्श का अनुभव, रूप रस गंध का अनुभव, अनुभव स्थान पर पहुंचकर ये पाचों एक ही है, दो चार कभी भी नहीं हो सकते। इस लिए गहराई से देखेगें तो ये सृष्टि एक ही पदार्थ से बनी है, दो चार पदार्थ से नहीं बनी, न ही बन सकती है। न अग्नि बना, न आकाश बना, न जल बना, न पृथ्वी बना। वास्तव में ये सब एक ही पदार्थ बना अग्नि, जल, शब्द, स्पर्श, रूप, और गंध। पांचों को देखकर हम भिन्न भिन्न अनुभव करते हैं। वास्तव में गहराई से अनुसंधान कर के देखेगें तो ये पाचों पांच नहीं है, वास्तव में एक ही पदार्थ है। एक ही में ये पांचों पदार्थ मिल जाते हैं। हरेक के अंदर मिलेंगे।

जैसे यह पंखा उठाकर देखो। इस पंखें के अंदर भी तुहानू ये पाचों तत्व प्रत्यक्ष नज़र आएंगे। इसको ठोकर मारो तो इसमें आवाज़ आएगी। ये आवाज़ जो आएगा ये आकाश का होता है। अच्छा, स्पर्श करो, इसमें कोई न कोई स्पर्श का सुख होयेगा, या मृदु होएगा, कुछ न कुछ होयेगा। ये वायु का होयेगा। इसका रूप जो हमको नज़र आता है, यह अग्नि का होयेगा। इसका कोई न कोई स्वाद होएगा, वह जल का होगा। इसके अंदर सुगन्धि, कोई न कोई सुगन्धि होयेगा, भले ही ज्यादा न हो, सुगंधि होना लाज़मी है। तो ये पाचों तत्व इसके अंदर भी है।

अभी ये जिसको हम कहते है कि पंखा है। ये मोटे तौर पर कह दिया। मगर ये पाचों मिलकर ही पंखा बनेगा। अकेला पंखा कभी भी नहीं हो सकता। किसी भी सूरत में अकेला कोई भी पदार्थ सिद्ध नहीं होयेगा। जिन जिन भी पदार्थों को तुम उठाकर देखोगा, ये पाचों तत्व आपको प्रतीत होयेगें, प्रत्यक्ष नज़र आऐंगे। ऐसा कोई पदार्थ नहीं होगा। जिसके अंदर ये पाचों तत्व छुपा हुआ न हो। क्योंकि यह एक ही पदार्थ है। जहां यह एक होगा वहां पाचों तत्व का होना लाजमी है। सृष्टि का कोई भी पदार्थ साधारणतः अनुसंधान करो बारीक से बारीक पदार्थ एटम है, उसका भी अनुसंधान करके देखेंगे तो उसके अंदर भी ये पाचों तत्व हैं। ये पाचों उसमें एक ही जगह काम करते है। जहां एक होगा वहां पाचों रहेगें, यह लाज़िमी बात है। अलहदा नहीं रह सकते हैं।

तो कहने का मतलब है कि ये भिन्न भिन्न न होते हुए भी हमारी दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। अलहदा अलहदा प्रतीत होता है, भिन्न भिन्न शकल में प्रतीत होता है। वास्तव में एक ही है किन्तु कोई मंदा, कोई खूबसूरत, कोई बदसूरत। किन्तु वास्तव में सूरत तो एक ही है। न वह बदसूरत है, न खूबसूरत है सूरत की शक्ल में सूरत ही है। इसमें कोई फरक नहीं होयेगा। क्षण भर आंखों के विकार की वजह से, कल्पना की वजह से भिन्न भिन्न प्रतीत होता है।

कहने का मतलब है कि सृष्टि का जो एकत्व-भाव है, वह स्वयं- सिद्ध भाव है। ये बनाने का भाव नहीं होता है। हर जगह के अंदर एकत्व भाव आपको मिलेंगे। कोई भी चीज उठाकर अनुसंधान करो, एकत्व भाव वहां छुपा हुआ मिल जाएगा। ये लोक, ब्रह्म लोक से भी ऊपर कोई लोक हो वहां भी अनुसंधान करके देख लो, वहां भी एकत्व-भाव ही सिद्ध होता है।

इसलिए शास्त्रकारों ने, महात्मा लोगों ने यह शिक्षा देने की कोशिश किया कि ये सृष्टि सारी एक ही पदार्थ से बनी है। एक ही पदार्थ है, दूसरा कोई पदार्थ नहीं होयेंगा। जैसे हमारे शरीर के अंदर अग्नि तत्व है, या जितने भी जीव जन्तु हैं, इनमें अग्नि है तो क्या वह अग्नि तत्व दूसरा हुआ? ऐसा कभी भी नहीं होयेगा।

इसी प्रकार आकाश तत्व, तुम्हारे अन्दर जो आकाश तत्व है, तमाम सृष्टि में वही आकाश तत्व काम कर रहा है। वृक्ष हो, लता हो, पशु-पक्षी हो, जीव हो, मनुष्य हो कुछ भी हो। सब के अंदर एक ही आकाश तत्व काम करता है। वायु तत्व भी एक ही काम करता है। अग्नि तत्व भी एक ही काम करता है। जल-तत्व भी काम करता है। पृथ्वी-तत्व भी एक ही काम करता है। दूसरा कोई पदार्थ कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता।

इस दृष्टि से तुम देखेगें तो 'वसुधैव कुटम्बकम्' यह सृष्टि सारी यह वसुधा ही हमारा घर है। इसके अंदर जितने भी जीव है। ये हमारे ही रूप हैं या हमीं है। हमारे रूप के सिवाय कुछ भी नहीं है। तुम्हारे अंदर जो पृथ्वी तत्व है वह दूसरे के पृथ्वी तत्व से कहीं भिन्न हो सकता है? ऐसा कभी भी नहीं हो सकता है। वही पृथ्वी तत्व इसके अंदर है, वही पृथ्वी तत्व तुम्हारे अंदर है। वही जल तत्व इसके अंदर है, वही जल तत्व तुम्हारे अंदर है। वही अग्नि तत्व इसके अंदर है वही अग्नि तत्व हमारे अंदर है वही वायु तत्व इसके अंदर है, वही तत्व तुम्हारे अंदर है। इसी प्रकार वही आकाश तत्व, अंहकार, महत्-तत्व भी मूल-प्रकृति का इस तरह अनुसंधान करते चले जाएगें तो आपको पता चल जाएगा कि ये सृष्टि वास्तव में एक ही पदार्थ है। दूसरा कोई पदार्थ कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता है। जितने भी गहराई में जाकर तुम टिकोगे एक ही मिलेगा।

गिनती भी तो एक ही है। गिनती भी आठ-दस-कभी बनता नहीं है। गिनती भी एक है। इस एक ही कल्पना करके हम आठ दस पन्द्रह बीस चार सौ दो सौ कुछ भी बना लो। गिनती भी वास्तव में एक ही है। वन प्लस वन अर्थात् एक जमा एक दो बनता है। दो को दो से तकसीम करके देखें क्या निकलेगा? एक ही निकलेगा ना? तीन को तकसीम करो, चार को करो, पांच को करो, छ, सात, आठ, नौ। नौ तक जाकर फिर क्या बनेगा? फिर एक बन जाएगा। बाकी आठ तक जो गिनती है वह स्थिर होएगा। वहां दस बन गया।

दस से बीस तक गिनां। बीस तक गिनोगे तो दो आ जाएगा। अर्थात् उन्नीस तक जेड़ा था वह सिफर हो गया। दो बन गया। दो का मतलब क्या निकला? वन प्लस वन। अर्थात् एक ही निकला ना? एक तो आवृति है, दूसरा आवृति बीस बनने पर दस का दूसरा आवृत्ति। इसलिए वहां पर दो आ जाता है। तीस बनने पर तीसरा आवृत्ति। दस का तीसरा आवृत्ति। चालीस बनने पर दस का चौथा आवृत्ति इस तरह दस का दस आवृत्ति होने पर सौ बन गया तो सौ को तुम सौ से तकसीम करो तो क्या निकलेगा? एक ही निकलेगा न? इसके अलावा कुछ नहीं। गिनती एक के अलावा कभी बन ही नहीं सकती। किसी भी सूरत में।

आगे भी आप करोड़ों अरबों गिनती करते चले जाओ, यही सिलसिला चलता रहेगा। यदि आवृति को आप दो, चार, पांच करते चले जाओ तो एक का दूसरा आवृत्ति किया तो वो दो बन गया, तीन किया तो तीन बन गया। फिर आवृत्ति किया तो चार बन गया। वास्तव में गिनती तो एक ही है। दूसरी बन ही नहीं सकती किसी भी सूरत में। किसी भी सूरत में बनती नहीं, मगर व्यवहार में हम बना लेते है लाज़मी। करोड़ों, अरबों किन्तु गिनती तो वास्तव में एक ही है। इसी तरह सृष्टि में इतनी क्रिया नज़र आते हुए यह एक ही पदार्थ है सारी सृष्टि के अंदर है। जो भिन्न भिन्न आपको प्रतीत होता है वह कल्पना के जरिए से हैं।

कल्पना एक विचित्र चीज है। कल्पना करते करते जो चीज जैसी है उसको भिन्न शकल में देखने का हम काम कर लेंगें। जैसे हम एक मनुष्य को शत्रु को शकल में देखते हैं या भिन्न ही शकल में देखते हैं। जिसको हम जिस तरह से देखते हैं वैसा ही नज़र आने लग जाएगा। इसके विपरीत जिसके अंदर शत्रु के भाव से देखेगें, वह शत्रु नजर आने लग जाएगा। आदमी में थोड़ी कोई फरक पड़ा है? आदमी में तो कोई फरक नहीं पड़ता है। आदमी तो वही रहता है। केवल कल्पना में फरक पड़ता है। कल्पना में फरक पड़ने की वजह से वह शत्रु या मित्र प्रतीत होने लग जाता है।

इसी प्रकार सृष्टि के अंदर में जितनी भिन्न्ता प्रतीत होती है, यह कल्पना की वजह से प्रतीत होती है। यह मन का संयम माना जाता है। यह कल्पना, मन के क्रिया

कल्पना के जरिए से भिन्नत्व को पैदा करता है। यह भिन्नत्व को पैदा करता है। यह भिन्नतव ही उपद्रव का कारण है। बन्धन भी सृष्टि में कुछ है। यदि तुम बंधन समझते हो कि सृष्टि के अंदर कोई अपने आप बंधा हुआ समझते हो। तुम कोई किसी भी जीव को देख लो, कोई बंधन में नहीं रहना चाहते हो, नहीं चाहते हुए भी बंधा अनुभव करते हो। हर जीव अपने आप को बंधा हुआ अनुभव करता है, क्यों अनुभव करता है? ये कल्पना ही बंधन का मूल कारण होता है। ये भिन्नत्व करते हो। भिन्नत्व से रागद्वेष पैदा करते हो। रागद्वेष से अंत:करण की प्रवृति में ढल जाते हो। अंत:करण की प्रवृति में ढल जाना बंधन का कारण होता है। इस लिए योगशास्त्र के अंदर इसका बड़ा महत्व है।

प्रत्याहार

प्रत्याहार उसको कहता है जो अत:करण की प्रवृति भिन्न भिन्न पदार्थो के अंदर जाकर घँसा हुआ होता है, उसको वहाँ से खींचकर निकाल देना यही प्रत्याहार है। वहाँ से समेट कर एक ही स्थान पर एकत्र कर देना यही प्रत्याहार है। जिस जिस पदार्थ के अंदर हमारे अन्त:करण की प्रवृति जाकर घुसी है, उसके प्रति ममत्व होता है। अंहकार होता है। उसको हम अपना बनाने की कोशिश करते है। रागद्वेष इनमें से कोई एक पैदा होयेगा। यदि हमारे अंत:करण की प्रवृति किसी में जाकर धंस जाती है, यदि हमें उसमें द्वेष है तो द्वेष-भाव पैदा हो जाएगा। तो जब कभी वह नज़र आएगा तो हमारे अंदर द्वेष पैदा हो जाएगा। मित्र-भाव होयेगा तो यह व्यक्ति मित्र नज़र आने लग जाएगा। इसका मूल कारण यह है कि जिसके अंदर जो प्रवृति न धंसा हो उसे तुम देख भी नहीं सकते हो। बाजार के अंदर बहुत सा सामान रखा हुआ होता है। सबके अंदर तुम्हारा मन नहीं जा सकता है।

जिसमें तुम्हारा मन धंसा हुआ हो वही नज़र आएगा। जिसे हम देखना चाहते है पहले हमारे अंत:करण की प्रवृति उसमें धंसी हुई हो तभी हम उसे देख सकेंगे। जब तक हमारे अंत:करण की प्रवृति उसके अंदर जाकर नहीं धंसती है तब तक यह चीज किसी भी सूरत में हमें नज़र नहीं आऐगी। अंत:करण के अंदर द्वेष भाव है तो वहीं उसमें जाकर घंस जाती है तो वही हमें द्वेष नज़र आने लग जाता है। तो वास्तविक द्वेष तुमने किससे किया? तुम्हारे अंत:करण से ही द्वेष किया। दूसरे से नहीं। तुम्हारे अंदर जो द्वेष भाव था वह दूसरे के अंदर जाकर घुस गया। इसलिए वास्तव में तुम्हारे अन्त:करण का भाव ही द्वेष था कोई दूसरा नहीं। द्वेष का कारण है हमारे अन्त:करण की प्रवृति। यह अन्त:करण का संस्कार जहां जहां जाता है वह दूसरे में नज़र आने लग जाता है। इसलिए इस अन्त:करण की प्रवृति के प्रत्याहार पर जोर दिया।

इसलिए यह अन्तःकरण की प्रवृति जहां जहां जाती है वहां से खींचकर एक जगह पर संग्रह करो। इसी को प्रत्याहार कहा। प्रत्याहार के जरिए से ध्यान, धारण की प्राप्ति हो जाती है। फिर समाधि मिल जाती है। इस लिए अन्तःकरण की प्रवृति का निरोध करने के लिए योग शास्त्र वालों ने बहुत जोर दिया। वास्तव में इस सृष्टि में मित्र की शक्ल में, शत्रु की शक्ल में जो कुछ भी हमें प्रतीत होता है, यह सब कल्पना के अलावा कुछ भी नहीं है।

यह कल्पना भिन्नत्व का कारण बनता है। वास्तव में भिन्न तो कुछ भी नहीं है। यदि कल्पना मिट जाये तो सब जगह ईश्वर है। आपको सब जगह ईश्वर ही ईश्वर नज़र आएगा। जब तक हमारी कल्पना जारी रहेगा, तब तक यह भिन्नत्व नज़र आता रहेगा। जब तक भिन्नत्व नज़र आता है अब तक कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। व्यक्ति के रूप से भी शांति नहीं मिलेगा, समष्टि के रूप से भी शांति नहीं मिल सकती है। जिसका मन मलीन हो जाता है, अशांत हो जाता है, वह अपनी कल्पना के जरिए से हम लोगों को अशांत बना देता है।

क्योंकि कल्पना शक्ति दूसरों में फैल जाती है। हमारे अन्तःकरण के अंदर जो भाव होता है, "अच्छा भाव हो, बुरा भाव हो, जब हमारे अंदर से प्राण निकलते हैं, कल्पना निकलती है तो यह कल्पना जहां भी जाएगी हमारे अंदर के भाव को वहां लेकर जाएगी। यह लाज़मी बात है। जो भावना हमारे अंदर छुपी हुई थी, कल्पना जब बाहर निकलती है तो भाव भी बाहर चला जाता है। कल्पना की गति तो बहुत तेज़ है। तमाम संसार के अंदर यह एक सैकिण्ड के अंदर फैल जाती है। तो कहने का मतलब हमारा यह है कि यदि हमारा अंतःकरण मलीन हो जाता है वो अन्तःकरण की भावना तमाम संसार में फैल जाती है। वो फैलते फैलते दूसरे के अंदर भी व्याप्त हो जाती है। यह व्याप्त करते करते दुनियां में बिगाड़ शुरु हो जाता है।

इस अनर्थ का मूल कारण यही है। यदि हम व्यक्तिगत–रूप से शांति चाहते है, समष्टि रूप से शांति चाहते हैं तो हमारा फर्ज है कि यह जो भिन्नत्व को प्रकट करने वाली वृत्ति है इसका निरोध करना होगा। एकत्व भाव को पैदा करना होगा। एकत्व भाव तो है ही। इसको बनाने की बात नहीं। आकाश एक है, जल एक है, अग्नि एक है, पृथ्वी एक है, अन्तःकरण भी एक है। यह सब मन इत्यादि एक ही है। यह जो तुम को भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। वास्तव में इनमें संसकार भिन्न हो सकता है। इसका मूल कारण एकत्व ही होगा। तुम जितना पीछे हटते चले जाओगे, आत्म तत्व की तरफ बढ़ोगे या परमात्व तत्व की तरफ बढ़ोगे तो वह एक ही सिद्ध होयेंगा। एक ही पदार्थ है, एक ही सिद्ध होयेगा, एक के अलावा दूसरा हो नहीं सकता।

मगर जितने भी ये रूप प्रतीत होते है यह सब एक के ही विवर्त हैं। जैसे तुम्हें ये पता नहीं कि तुम्हारे शरीर से बहुत सी चीजें निकलती है। साईंटिस्ट भी कहता है कि हमारे शरीर से बहुत सी चीजें निकलती रहती है, खारिज होता रहता हुआ पदार्थ क्या शक्ल धारण करता है?

आखिर वो भी तो कोई शक्ल धारण करता होगा? हमारे शरीर से जो प्राण निकलता है या जो चीज़ खारिज होती है, यदि खारिज नहीं होती ये शरीर बुड्ढा नहीं हो सकता है, या बीमार होता है भिन्न शकल धारण करता है। लाजमी है कि इसके अंदर से कोई न कोई चीज़ खारिज़ होती रहती है, हमेशा। ये जो द्रव्य हमारे शरीर से खारिज हुआ द्रव्य बाहर जाकर क्या करता है? इसका मतलब है कि हमने अनुसंधान किया नहीं। मगर वह तमाम शरीर से निकला हुआ जो ओज, शक्ति है, वह बाहर जाकर शक्ल धारण कर रहा है। अनेक शकल धारण कर रहा है।

इस पर गहराई से विचार करोगो तो तुम उसी एक स्थान पर पहुँच जाओगे कि एक ही पकती चीज़ ने ये सारी शकल धारण की। जिस किसी वक्त यह सृष्टि बनी थी सिर्फ एक एटम था जिसने इस सृष्टि का शकल धारण की। आजकल तो वैज्ञानिक लोगों ने भी कहा। लेकिन हमारे वेदों ने तो यह पहले ही कह दिया कि यह लाजमी है कि एक ही शरीर से यह सारी सृष्टि बना। यदि ब्रह्मा जी ने यह सृष्टि बनाई जैसे कि पौराणिक मानते हैं। फर्ज कर लो कि आखिर उन्होंने यह कहां से किया? ब्रह्मा जी के शरीर से ही यह पैदा किया मानना होगा। पौरणिकों के मुताबक ब्रह्मा जी ने इस सृष्टि को पैदा किया। तो उस समय ब्रह्मा जी के अलावा तो कोई नहीं था।

सृष्टि का मूल

ब्रह्मा जी ने जब सृष्टि पैदा किया तो आखिर कहां से किया? मानना होगा कि उनके शरीर ने ही फैल कर भिन्न भिन्न शकल धारण की सृष्टि ने। यही ब्रह्मा जी की सृष्टि की क्रिया है। यही भिन्न भिन्न लोग, ईसाई मुसलमान जो कहते हैं कि खुदा ने कहा जमीन बन जाओ, खुदा ने कहा आकाश बन जाओ, खुदा ने कहा अग्नि बन जाओ, जल बन जाओ कहा, कहां से बना यह खुदा के अलावा जब कोई चीज ही नहीं था? जब खुदा से भिन्न कोई पदार्थ नहीं था तो कहां से बना?

आखिर खुदा का शरीर ही आकाश बना, यह मानना होगा। तभी जाकर यह बन सकता है। दूसरा कोई पदार्थ नहीं था इसके अंदर। इसी दृष्टि से तुम देखेगा तो पता चलेगा इस का मूल एक ही पदार्थ होयेगा। जैसा मैने पहले कहा, हमें यह पता नहीं कि हमारे शरीर से निकलने वाली चीज क्या शकल धारण करती है? कहां तक फैल जाती है? इसका

मतलब हमें कोई पहचान नहीं मगर वो जरूर फैलती है। तमाम संसार के अंदर फैलता है और वो कुछ न कुछ शक्ल धारण करती रहेगी। जरूरी है कि हमारे शरीर के अंदर भी बहुत चीज़ है। इतना जीव हमारे शरीर के अंदर छुपा हुआ है। हम इस का वर्णन नहीं कर सकते हैं।

इस शरीर का अनुसंधान करके देखो - ये जो माइक्रस्कोप है, उससे देखोगे तो पता चलेगा कि ये शरीर सारा जीवों से भरा हुआ है इसमें इतने जीव हैं, अरबों करोड़ों जीव इसके अंदर छुपे हुये हैं तो यह शरीर सारा जीवमय है। एक बूंद पानी के अंदर देखो तो इसके अंदर अरबों जीव दिखाई देंगे। टी. बी. मरीज के बारे में कहता है कि उसकी एक मामूली जगह के अंदर अरबों करोड़ों जीवाणु, इतनी बारीक कीटाणु उस में छुपे हुये होते हैं। इसी प्रकार एक जीव या एक मनुष्य का भी अनुसंधान करके देखो उसके अंदर एक ब्रह्माण्ड छुपा हुआ होता है। एक ब्रह्माण्ड के अंदर जितने जीव हैं। एक शरीर के अंदर भी उतने ही जीव हैं। एक की शरीर के अंदर वह सिद्ध होता है, एक ही शरीर के अंदर। इसका मूल कारण यह है कि एक ही जीव ने फैल कर इतनी शक्ल धारण की, दूसरा कोई है ही नहीं। हमारे कहने का मतलब यह है, हमारा फर्ज है कि उस एक ही स्वभाव को प्राप्त करने की कोशिश करो।

वह अखण्ड है

हमारी दृष्टि सूक्ष्म होनी चाहिए, सूक्ष्मातिसूक्ष्म चीजों के अनुसंधान करने की शक्ति होनी चाहिए। सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों का जब हम अनुसंधान करते चले जाएगें तो हमें पता चलेगा कि यह सृष्टि सारी एक ही पदार्थ से बनी हुई है। एक ही पदार्थ इसके मूल में है, दूसरा पदार्थ कभी सिद्ध हो ही नहीं सकता। यह दृष्टि जिसको मिल जाती है वह बिल्कुल स्वतंत्र होएगा। उसका बंधन कौन करेगा? जहां दो नहीं है वहां बंधन नहीं होयेगा। जहां दो होयेंगा, वहां बंधन होगा। इस दृष्टि में दो कोई चीज़ सिद्ध हो ही नहीं सकती। आजकल अणु का तो भेदन हो सकता है, एटम तो भेदन कर लिया साईसदानों ने। अगर अणु एक जीव नहीं, भिन्न भिन्न चीजों से मिला हुआ होने की वजह से उस का भेदन हुआ। मगर इस के अंदर छुपा हुआ जो एक पदार्थ है वह भिन्न भिन्न चीजों में मिला हुआ नहीं। एक पदार्थ है।

एक जीव होने की वजह से कभी उसका भेदन नहीं होयेगा। कभी भेदन न होने की वजह से वो कभी मरेगा नहीं। उसके अंदर मौत नहीं आ सकता। मौत उसको आती है जिस का भेदन हो सके। या अलग हो सके। उसी के अंदर मौत होयेगा। जो अलहदा न हो सके उसके अंदर मौत किस तरह हो सकती है? हमारे शरीर के अंदर मौत हो सकती है। क्योंकि यह भिन्न भिन्न चीजों से मिलकर बना हुआ है। अलहदा हो जाऐगा तो मौत माना जाएगा।

जो पदार्थ अभेदनीय है, एक ही है, उसके अंदर मौत नहीं हो सकती। उसके अंदर अग्नि प्रवेश नहीं कर सकती, अग्नि उसे फूंक नहीं सकती। जल उसे गीला नहीं कर सकता, वायु उसे सुखा नहीं सकती, कोई भी उसके अंदर खंड नहीं कर सकता। वह अखण्ड है, अखण्ड है। सब जगह के अंदर समान- रूप से रहता है। द्वन्द्व-रहित अवस्था यह ही है, जब द्वन्द्व होयेगा तो वो अलहदा हो जायेगा। वो बंधन का कारण बन जायेगा। उसके अंदर दुःख होयेगा, मौत भी तुम्हें इसी के अंदर प्रतीत होयेगी जो अलहदा होयेगा। (शरीर आत्मा को अलग अलग मानने से दुःख होगा)

मौत कोई अलग पदार्थ नहीं है। यह शरीर जिस पदार्थ से बना हुआ है वो अलहदा हो जाता है तो तुम उसे मौत कहते हो। पंचतत्व की प्राप्ति कहते हो। अलहदा अलहदा भी हो जाता है। अग्नि जल वायु आकाश के अंदर बदली होयेगा। इसी को तुम मौत कहते हो। इसी को पंचतत्व कहते हो। तो कहने का मतलब है वास्तव में जब तुम्हारी दृष्टि सूक्ष्म हो जाएगी तो ये अग्नि जल, वायु, आकाश का भिन्नत्व जो तुम्हें प्रतीत होता है वह अग्नि, जल वायु, आकाश भी तुम्हें एक जैसा ही लगेगा। ये कई बार मैं तुम्हें सिद्ध कर चुका हूं कि एक ही पदार्थ उसमें रहता है। वो कभी नष्ट नहीं होता। एक ही पदार्थ कभी भी नष्ट नहीं हो सकता।

हमेश रहेगा। हर टाइम पर रहेगा। कभी खत्म नहीं होयेगा। एकत्व भाव से। भिन्नत्व भाव से वह जरूर नष्ट हो जायेगा। बदल जाएगा, भिन्न भिन्न शकल धारण करेगा। जहां भिन्न भिन्न शकल धारण करेगा उस जगह अशांति फैल जायेगी वो किस के जरिए से? वो कल्पना के जरिए से होयेगा। बुद्धि के जरिए से होगा।

भिन्नत-भाव कब बड़ता है? जब हम बुद्धि के जरिए से इसे देखते हैं, बुद्धि के जरिए से इसे समझते हैं, बुद्धि के जरिए से इस का अनुसंधान करते हैं। बुद्धि ही कल्पना करते जाते हैं। तब तुहानू ये भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। जब इस दुनियां से ऊपर उठ कर हम देखते हैं तो यह भिन्न भिन्न बिल्कुल नहीं होयेगा। एकत्व-भाव होगा। वहां अखण्ड-शांति होयेगा। बिल्कुल अखण्ड- शांति है। वहां विचार के लिए कोई गुजाइश नहीं।

आखिर हम चाहते क्या हैं? संसार के अंदर जितने भी जीव है। जानवर हो, पक्षी हो, मूर्ख या पंडित हो, कुछ भी हो, यह पशु पक्षी जो भी हैं, चाहते क्या हैं? इस का गहराई से विचार करके देखें। आखिर सब चाहते क्या हैं? सबेरे से शाम तक जन्म से मौत तक कुछ न कुछ हम करते रहते हैं, क्यों करते हैं? तुम्हें पता चल जायेगा।

मुक्ति ही इस का उद्देश्य होगा। स्वतंत्रता ही इसका उद्देश्य होगा। विकार-रहित होना ही इसके उद्देश्य होयेगा। ये विकार-रहित होने के लिए जो कुछ भी काम तुम करते

हो विकार-रहित होने के लिए ही काम करते हो। यदि विकार-रहित होने का उद्देश्य छोड़ दिया जाये तो सृष्टि का कोई भी काम नहीं चल सकता। मगर विकार-रहित होने का हमारा उद्देश्य होने के बावजूद भी हम समझ ही नहीं रहे कि ये सब हम क्यों कर रहा है?

ये पता न लगना ही अज्ञान-अवस्था होता है। ये ही मूढावस्था कहा जाता है, यही अविद्या अवस्था कहा जाता है, ये ही माया-अवस्था कहा जाता है। यदि किसी प्रकार तुम इस अविद्यावस्था को मिटा सको तो तुम देखोगे कि तुम बिल्कुल स्वतंत्र हो, विकार-रहित हो, विकार-रहित होने की तुम कोशिश करते हो। सवेरे से शाम तक करते हो, थक भी जाते हो, दु:खी भी हो जाते हो, कहीं भी तुम्हें शांति नहीं मिलती तो तुम विकार-रहित होने की कोशिश करते हो। जैसे नींद लाने की कोशिश करते हो। नींद के अंदर कुछ देर के लिए तुम विकार-रहित हो जाते हो, नींद के अंदर थोड़ा टाइम के लिए तुम शांत हो जाते हैं।

नींद के अंदर एक बड़ा भारी सुख तुम्हें वहां मिलता है। नींद जब आती है तो संसार के जितने भी सुख हैं वो उसके सामने फीके होयेंगे। जिस वक्त नींद आती हो उस वक्त संसार का कोई भी और पदार्थ हमें सुखी नहीं कर सकता है। नींद के अंदर एक बड़ा भारी आनंद है, उसका अनुभव होता है। उस आनंद का कारण वास्तव में कह नहीं सकते। मगर बुद्धि उसमें थोड़ा लय हुई थी। नष्ट नहीं हुई थी। बुद्धि नष्ट नहीं हुई। लय रहती है कारण बन कर। बुद्धि कारणावस्था में रहने के कारण उस टाइम जो सुषुप्ति अवस्था के अंदर एक आनंद का आभास हुआ था उस आभास को लेकर जागने पर हमें बड़े भारी आनंद का अनुभव आया।

मगर ये पता नहीं कि वह आनंद क्या था। यदि बुद्धि से पूछा जाये कि वो आनंद क्या है तो वो बता नहीं सकती। मगर एक आनंद का आभास उसे जरूर हुआ है। वही ही स्वतंत्रता अवस्था है, स्वतंत्रता अवस्था के अंदर ही आनंद मिलेगा। जब स्वतंत्र नहीं हो तो आनंद कभी भी नहीं मिलेगा। सुषुप्ति-अवस्था के अंदर थोड़ी देर के लिए स्वतंत्र हो जाता है। बुद्धि लय हो जाती है, थोड़ी देर के लिए वह स्वतंत्र हो जाता है तो वो आनंद उसको अनुभव होने लग जाता है।

इस लिए वो आनंद महान होने की वजह से सृष्टि का कोई भी आनंद उसके मुकाबले कुछ भी नहीं। कहने का मतलब है कि हमारा तमाम जीवों का एक मात्र उद्देश्य वो आनंद ही है। इसी आनंद के लिए हम कोशिश करते हैं। हम रात दिन प्रयत्न भी इसी आनंद के लिए करते हैं। लेकिन हम समझ नहीं रहे कि वास्तव में हम क्या कर रहे हैं? यही अज्ञान-अवस्था है। इसी अज्ञान- अवस्था को मिटाने के लिए हमने भिन्न भिन्न पदार्थों का अनुसंधान किया। जब यह अज्ञान मिट जाएगा तो वह आनंद सब जगह समान-रूप से

अखण्ड अवस्था में भरा हुआ मिलेगा। महदूद नहीं, एकदेशीय नहीं। सर्वत्र भरा हुाआ, अखण्ड है। कभी नष्ट नहीं होयेगा। हम उसी के जरिए से कोशिश कर रहे हैं।

सृष्टि के अंदर कौनसा ऐसा जीव है जो आनन्द प्राप्ति नहीं करना चाहता हो? हर कोई आनंद प्राप्ति करने की कोशिश कर रहा है। मगर ऐसा भी कोई जीव है जो ऐसा नहीं चाहता हो? वो चाहता है आनंद भी मिले, यह अखण्ड भी रहे, कभी कन्ज्यूम न हो, ऐसा आनंद वह चाहता है। इसके अंदर वह आनंद छुपा हुआ है। इसी वजह से उसमें चैतन्य पैदा हो जाता है। यदि वह आनंद का अभाव उसके अंदर मान लिया जाये तो उसमें कभी भी इस की इच्छा पैदा हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिसका अभाव हो तो उसकी इच्छा कैसे पैदा हो सकता है? कभी भी पैदा नहीं होयेगा।

उसका भाव है। हमारे हृदय के अंदर है। वो भाव है इस लिए हमारे मन में आनन्द की इच्छा पैदा होता है। मगर कामयाबी नहीं होता है। मगर भिन्न भिन्न पदार्थों के जरिए से, भिन्न भिन्न तरकीब से, उसे प्राप्त करने की कोशिश करता है, इसलिए कामयाब नहीं होता है। इस आनंद को अन्त:करण के जरिए से, बुद्धि के विचारों के जरिए से, मन की कल्पना के जरिए से, चित्त के चित्त वन के जरिए से, अंहकार के जरिए से हम प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। इसमें कामयाबी कभी भी नहीं होयेगी। जिस टाइम पर ये विचार शांत हो जाती है, अन्त:करण शांत हो जाता है, बुद्धि स्थिर हो जाती है, विचार जब नष्ट हो जाता है तब जाकर उस आनंद का अनुभव होयेगा जिसकी कि हम कोशिश करते हैं। आज भी हम उसी का कोशिश करते हैं।

यह दर असल किसी एक देश का नहीं तमाम दुनियां का आस्तिक सिद्धांत है। यद्यपि अन्त:करण को सिद्ध करने के लिए, स्थिर रहने के लिए उन्होंने भी कहा। नास्तिक किसको कहते हो? जो ईश्वर को नहीं मानता, वेद को नहीं मानता, एक मजहब को नहीं मानता। कुछ भी नहीं मानता। वो भी मन को शुद्ध करने के लिए, मन को स्थिर करने के लिए कहता है कि जब तक मन स्थिर न हो, तब तक शांति नहीं मिल सकती है। बुद्धि जब तक स्थिर न हो, शांति नहीं मिल सकती है। बुद्धि जब तक स्थिर न हो, यह शांति नहीं मिल सकती है। तभी बुद्धि की स्थिरता के लिए वो भी कहता है। ईश्वर के न मानने के बावजूद भी वो ऐसा करता है, तुम भी सुबह से शाम तक जितने भी जीव है, सवेंरे से शाम तक किसके लिए काम करते हो? बुद्धि को स्थिर करने के लिए। तुम जितने भी काम करते हैं, गहराई से देखें बुद्धि को स्थिर करने के लिए ही सब कुछ करते हैं।

जब हमारे दिल के अंदर किसी पदार्थ के लिए किसी किस्म का इच्छा पैदा होती है। ये पैदा होते ही उसे पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं। क्यों करते है? जब इच्छा पैदा होती

है तो बुद्धि के अंदर चंचलता पैदा हो जाती है। वो चंचलता हम बर्दाशत नहीं कर सकते। उसके अंदर स्थिरता लाने के लिए ही तुम इच्छित पदार्थ उसे देते हो। इच्छित पदार्थ देते ही वह स्थिर हो जाता है। थोड़ी देर के लिए तुम्हें सुख का अनुभव होता है। वास्तव में सवेरे से शाम तक तुम जितने काम करते हो वह बुद्धि की शुद्धि-बुद्धि की स्थिरता के लिए करते हो। मगर हम समझ नहीं रहे इस बात को। जैसे हम किसी बच्चे को पढ़ने के लिए कहते हैं तो क्या यह नहीं कहते कि स्थिर होकर बैठो तभी जाकर पढाई तुम्हें आयेगी?

जब तक बुद्धि स्थिर नहीं होयेगी उसके अंदर मन नहीं लगेगा, तब तक वह पढ़ाई के लिए आ ही नहीं सकता। तो जब पढ़ाई के लिए भी बच्चापन में हम यही शिक्षा देते है कि बुद्धि स्थिर करो। बुद्धि के विकारों को नष्ट किए बिना बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती है। विद्यार्थी को शिक्षा देते हो कि विकारों को देखते रहो। विकारों को देखे बिना बुद्धि स्थिर नहीं होयेगी। यदि बुद्धि स्थिर होगी तो विद्या आ जायेगी। बुद्धि स्थिर नहीं होगी तो विद्या नहीं आयेगी। सृष्टि के अंदर कोई भी उद्यम करना हो, वकालत करनी हो, ईजीनियर बनना हो, डाक्टर बनना हो कुछ भी बनना हो, साईसदान बनना हो। क्या बुद्धि की स्थिरता की जरूरत नहीं? बुद्धि की स्थिरता से ही कुछ हो सकता है। बुद्धि की स्थिरता से ही सारे के सारे काम होते है। बुद्धि स्थिर होने से ही हम कामयाब होते है। बुद्धि स्थिर न हो तो कामयाब नहीं होते। तो उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि सबेरे से शाम तक जो कुछ भी काम हम करते हैं बुद्धि को स्थिर करने के लिए ही प्रयत्न करते हैं। यह अज्ञान की वजह से हम समझ ही नहीं रहे।

हम यह समझते है कि आंख बन्द करके नाक पकड़ कर बैठे रहें। यही बुद्धि को स्थिर करने का उपाय है, ये बात नहीं। हम जो कुछ कोशिश करते हैं सब बुद्धि को स्थिर करने के लिए करते हैं। बुद्धि को शांत करने के लिए करते हो, बुद्धि को समाधिस्थ बनाने की कोशिश करते हो। लेकिन जब तक बुद्धि की समाधि- अवस्था नहीं मिलती तब तक तुम इस पदार्थ का अनुभव नहीं कर सकते।

यदि हम देख रहे हैं तो लाजिमी है कि इसके अंदर हमारी बुद्धि समाधिस्थ होयेगी। भले ही चाहे थोड़ी देर के लिए। जब तक हमारी बुद्धि समाधिस्थ न हीं होयेगी हमें कोई भी चीज़ नज़र नहीं आयेगी। सूर्य को तुम देखते हो उस टाइम पर बुद्धि स्थिर होती है। समाधि- अवस्था होता है। इसी प्रकार चांद देखतो हो, तारा-मण्डल देखते हो, इसी प्रकार यह जो हम बोल रहे हैं। यह भी समाधि- अवस्था के अंदर ही बोल रहे हैं। यदि समाधि- अवस्था नहीं हो तो हम बोल नहीं सकते है। किसी भी सूरत में नहीं। इस दृष्टि से देखें तो यह सारी सृष्टि एक अखण्ड-समाधि- अवस्था में ही काम कर रही है। अखण्ड-समाधि है। इसे

चैतन्य-समाधि भी कहते हैं। इस चैतन्य-समाधि पर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य का ध्यान स्वरूप बन जायेगा। उसके जितने भी बंधन है वो उसी समय स्वतंत्र बन जायेगें जब तक चैतन्य पर दृष्टि नहीं पड़ेगी, स्वतंत्र नहीं होएगें।

समाधि कहीं से लाने की जरूरत नहीं है, हर सैकिण्ड पर आम हम समाधि का अनुभव करते हैं। समाधि के लिए हम कोशिश करते हैं। कोई ऐसा काम नहीं जिस में हम समाधि के लिए कोशिश नहीं करते। मगर इस रहस्य को हम समझ नहीं रहे। हम क्यों कर रहे हैं? यह सब पता नहीं होने की वजह से हम समाधि किसी और चीज को समझ बैठते है। यह बिल्कुल गलत है। 'समाधाय यःस समाधिः' बुद्धि की जो समाधान अवस्था है उसी को समाधि कहा जाता है। बुद्धि की समाधान अवस्था के बिना सृष्टि में कोई काम नहीं हो सकता है। सृष्टि के अंदर जितने काम हो रहे हैं, यह सब समाधि-अवस्था में ही हो रहे हैं। समाधि के अंदर ही सृष्टि के सारे काम होते हैं समाधि नहीं, तो सृष्टि का कोई काम नहीं हो सकता है।

यह समाधि जिस जिस व्यक्ति के अंदर बड़ जाती है तो उसे ही समाधि कहा जाता है। संसार का जितना भी काम है वह बुद्धि के समाधिस्थ होने से ही होता है। ऐसा व्यक्ति बिल्कुल स्वतंत्र होता है, उसका कोई बंधन नहीं होयेगा। भगवान कृष्ण और भिन्न भिन्न अवतार लोगों ने इस ओर इशारा किया कि इसके बाद तुम बिल्कुल स्वतंत्र होते हैं, तुम्हें कोई बंधन नहीं होता है।

यदि तुम समाधि के अंदर सृष्टि के सारे काम करें तो तुम्हें कोई बंधन नहीं होयेगा। वो समाधि तुम्हारे अंदर छुपी हुई है। मगर अज्ञान की वजह से हम समझ नहीं रहे। करते भी समाधि की वजह से, खाते भी समाधि की वजह से हैं, सब कुछ उसी के जरिए से होने के बावजूद हम समझने में असमर्थ रह जाते हैं। यही अज्ञान-अवस्था है। इसी अज्ञान-अवस्था को हटाने के लिए भिन्न भिन्न महात्मा लोगों ने हमें भिन्न भिन्न प्रकार से शिक्षा दी। मगर समझता कोई नहीं है। ना ही समझता है, न समझने के कारण ही तड़पता है।

वास्तव में महात्मा लोगों ने सत्य की ओर इशारा किया। जैसे दूज के चन्द्रमा के लिए कहा, मगर वो छज्जे पर नहीं वो तो केवल इशारा-मात्र है जो महात्मा लोगों ने किया। वह चन्द्रमा छज्जे पर चन्द्रमा यह व्यक्तिगत पहचान है। व्यक्ति से परे देखेंगे तो हमारा कल्याण हो जाएगा। जब तक जीव की दृष्टि से देखेंगे हमें दूज का चन्द्रमा छज्जे पर ही नजर आयेगा। किन्तु वास्तव में यह अन्यत्र है।

इसी तरह महात्मा लोगों ने जिस सत्य का लक्ष्य किया हमें भी प्रत्यक्ष नज़र आने लग जायेगा कि वास्तव में यह समस्त सृष्टि एक ही पदार्थ है। सृष्टि के अंदर जितना भी

क्रिया है वह समाधि की वजह से होती है, तुम सोते हो, खाते हो, पीते हो, सूंघते हो, कुछ भी करते हो। जब यह दृष्टि हो जायेगी यह सब समाधि-अवस्था है। तब तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। और कोई कल्याण का सहज तरीका नहीं। आखिर तुम्हें इसी स्थान पर आना पड़ेगा। जब तक यहां नहीं आएंगें, कभी भी कल्याण नहीं होयेगा। इसी लिए हमारे कहने का मतलब है कि यदि कल्याण चाहते हो तो इस तरह से देखो। इसी में कल्याण है।

– ॐ –